# लघीयस्त्रय

## अनुक्रमणिका

001) श्री अकलंक-देव कृत मंगलाचरण

002) शंकाकार कहता है कि सर्वथैकांतवादी भी सुगत आदि को धर्म का तीर्थंकर मानना अविरुद्ध ही है क्योंकि बाधक प्रमाण का अभाव है । उनके तीर्थ में भी तो प्रमाण आदि के लक्षण का प्रतिपादन संभव है । ऐसे पक्ष का निराकरण करते हुए स्याद्वादमार्ग की निष्कंटक शुद्धि के लिए आचार्य कहते हैं

003) इस प्रकार से कण्टक शुद्धि को करके संबंध अभिधेय, अनुष्ठान और इष्टप्रयोजन के निर्देशपूर्वक प्रमाण के लक्षण और भेदों को बतलाने के लिए आगे का सूत्र कहते हैं

004) आपने 'प्रत्यक्ष का लक्षण विशद है' ऐसा कहा है, वह ज्ञान की विशदता कैसी है ? ऐसी आशंका होने पर आचार्य कहते हैं

005) अब सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष के कारण और भेद का निर्णय करने के लिए आचार्य कहते हैं -

006) अब ज्ञान के भेद और प्रमाण तथा फल के व्यवहार को बतलाते हैं -

007) अब प्रमाण के विषय के विसंवाद को दूर करने के लिए आगे कहते हैं -

008) एकांत में अर्थक्रिया का विरोध ही है, इसी बात को और स्पष्ट करते हैं -

009) एक में अनेकाकार को व्याप्त करके रहना और अनेक अर्थक्रिया को करना कैसे है ? अथवा अनेकत्व में एकत्व कैसे होगा ? क्योंकि विरोध आता है। इस प्रकार की आशंका को निवारण करते हुए श्री भट्टाकलंक देव अनेकांत में विरोध के स्वभाव को दिखलाते हैं -

010) वस्तु के इसी अनेकांत स्वरूप का सौगत के द्वारा मान्य चित्रज्ञान के दृष्टांत के बल से समर्थन करते हैं

011) अब इस समय परोक्ष प्रमाण के कारण और भेद को कहते हैं।

012) अविनाभाव का प्रत्यक्ष अथवा अनुमान से निर्णय हो जाता है। पुन: तर्क नाम के एक भिन्न प्रमाण को क्यों आपने कल्पित किया है ? ऐसी आशंका होने पर आचार्य कहते हैं -

013) पुन: अनुमान प्रमाण क्या है ? ऐसा प्रश्न होने पर इस सूत्र को कहते हैं -

014) तादात्म्य और तदुत्पत्ति से अविनाभाव होता है इसलिए व्यापक का व्याप्य ही लिंग है और कारण का कार्य ही लिंग है। इस प्रकार विधि हेतु दो प्रकार के ही हैं। इस तरह सौगत के विसंवाद का निराकरण करते हुए कारण को भी लिंगत्व हेतुपना सिद्ध करते हैं

015) अब पूर्वचर को भी हेतुपना सिद्ध करते हुए कहते हैं

016) अब दृश्यानुपलब्धि ही निषेध साधन है, अदृश्यानुपलब्धि नहीं है, इस एकांत का निराकरण करते हुए कहते हैं

017) स्याद्वादियों के यहाँ भी अनेकांतात्मक तत्त्व प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध होने से अनुमान प्रमाण की विफलता का प्रसंग आ जाता है, इस प्रकार की आशंका होने पर आचार्य अगली कारिका को कहते हैं

018) बौद्ध के मत में 'अनुपलब्धि हेतु मत सिद्ध होवे किन्तु कार्य हेतु और स्वभाव हेतु ये दो हेतु होवेंगे परन्तु वे दोनों हेतु भी नहीं घटते हैं, आचार्य ऐसा कहते हैं

019) और दूसरी बात यह है कि अनुमान विकल्पात्मक है वह सौगत के मत में सिद्ध ही नहीं हो सकता है, ऐसा प्रतिपादन करते हैं

020) आप जैन के यहाँ भी प्रमाण के दो विध का नियम नहीं टिकता है क्योंकि आपने उपमान नाम के एक भिन्न प्रमाण को संगृहीत नहीं किया है। इस प्रकार से कहने वाले नैयायिक आदि की व्यवस्था को आड़े हाथ लेते हुए उनके मत में भी संख्या के नियम को विघटित करते हैं

021) इसी उपर्युक्त कथन का ही समर्थन करते हैं

022) न केवल ये ही प्रमाणांतर है अपितु अन्य भी हैं, ऐसा दिखलाते हैं

023) इस प्रकार सम्यग्ज्ञान लक्षण प्रमाण, प्रत्यक्ष-परोक्ष भेद, द्रव्य पर्यायात्मक अर्थ विषय और अज्ञाननिव्रत्ति आदि फल, इन चारों को प्रतिपादित करके इस समय प्रमाणाभास का निरूपण करते हुए कहते हैं -

024) इस समय जो सौगतों ने विकल्पज्ञान को प्रत्यक्षाभास कल्पित किया है, उसका निराकरण करते हुए कहते हैं

025) स्वसंवेदन आदि प्रत्यक्ष ज्ञान में विकल्प नहीं हैं क्योंकि वे दिखते नहीं हैं, इस पक्ष का निराकरण करते हुए कहते हैं

026) इसी का समर्थन करते हुए कहते हैं -

027) अब इस समय श्रुतज्ञान में प्रमाण आरै प्रमाणाभास की व्यवस्था को प्रतिपादित करते हैं -

028) श्रुत को सर्वत्र अप्रमाण की आशंका करने पर अतिप्रसंग दोष को दिखलाते हैं

029) सर्वत्र श्रुत में अविश्वास होने पर और भी अनिष्ट को बताते हैं

030) सुगत के वचन को भी अप्रमाणता हो जावे क्योंकि प्रत्यक्ष और अनुमान को ही प्रमाणता है क्योंकि पुरुषों के विचित्र अभिप्राय होने से अर्थ में व्यभिचार आता है, इस प्रकार की दाशबल की शंका का निरसन करते हैं

031) अब इस समय प्रमाण और प्रमाणाभास की परीक्षा करके नय और नयाभास के लक्षण की परीक्षा के लिए कहते हैं

032) देश, काल और आकार के भेद से अत्यंत भिन्न ही भाव परमार्थसत् हैं किन्तु सत् सामान्य नहीं हैं। इस प्रकार की बौद्ध की मान्यता का निराकरण करते हुए कहते हैं-

033) उस सत्सामान्य के नय का निरूपण करते हैं

034) प्रत्यक्ष से भेद सिद्ध है पुन: अभेद नयरूप संग्रह मिथ्या है क्योंकि प्रत्यक्ष से बाधित है। इस प्रकार की सौगत की विचारधारा का निराकरण

करते हुए कहते हैं

035) इस प्रकार सत्सामान्य लक्षण शुद्ध द्रव्य का समर्थन करके अब ऊध्र्वता सामान्य लक्षण अशुद्ध द्रव्य का समर्थन करते हैं

036) कार्य कारण का भिन्न काल होने से क्षणिक में ही अर्थक्रिया संभव है नित्य में नहीं, इस प्रकार के बौद्ध के वाक्यों को शोधन करते हुए कहते हैं

037) एक ही अनेक कार्य को करने वाला और धर्मों में व्याप्त होकर रहने वाला कैसे हो सकता है क्योंकि परस्पर में विरोध है ? इस आशंका का निराकरण करते हुए कहते हैं

038) इस प्रकार सत्सामान्य रूप पर द्रव्य को और उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य से युक्त अपर द्रव्य को प्रतिपादित करके उसमें पर द्रव्य को विषय करने वाले परसंग्रह को और तदाभास को दिखलाते हुए कहते हैं

039) अब इस समय नैगमनय और तदाभास का निरूपण करते हैं

040) गुण-गुणी आदि में समवाय संबंध है ही है इस प्रकार के यौगमत का निराकरण करते हुए कहते हैं

041) ब्रह्मवाद और भेदवाद में भी प्रमाण आदि व्यवहार संभव हैं अत: वे संग्रहावास और नैगमाभास कैसे हैं ? इस प्रकार के आक्षेप को समाप्त करते हुए कहते हैं

042) अब उनके सुनयत्व को प्रतिपादित करते हैं

043) अब ऋजुसूत्र नय का निरूपण करते हैं

044) अब शब्द, समभिरूढ़ और इत्यंभूत इन तीनों नयों का भी निरूपण करते हैं

045) शब्द और अर्थ में संकेत ग्रहण का अभाव होने से शब्द के भेद से अर्थ में भेद कैसे हो सकता है ? प्रत्यक्ष से संकेत का ग्रहण होने पर भी वह व्यवहार में उपयोगी नहीं है क्योंकि गृहीत और संकेत उसी समय नष्ट हो जाते हैं। स्मृति भी संकेत को विषय नहीं करती है क्योंकि वे दोनों अतीत हो चुके हैं। इस प्रकार सौगत की आशंका का निराकरण करते हुए आचार्य कहते हैं

046) शब्द और अर्थ में संबंध का अभाव होने से शब्द की प्रमाणता कैसे होगी ? कि जिससे उसके विषय में शब्दादिक नय समीचीन होवें ? ऐसी आशंका का निराकरण करते हुए आचार्य कहते है

047) काल, कारक और लिंग के भेद से शब्द अर्थ में भेद करने वाला है यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि उसको ग्रहण करने वाले प्रमाण का अभाव है। ऐसी आशंका का निरसन करते हुए आचार्य कहते हैं

048) एकांत में भी एक में षट्कारक की व्यवस्था का होना कैसे घट सकता है ? ऐसी आशंका के होने पर आचार्य कहते हैं

049) नय विकल्पात्मक है इसलिए वे तत्त्वों के ज्ञान की सिद्धि नहीं करा सकते हैं। जैसेस्मृति आदि तत्त्वों के ज्ञान को कराने में असमर्थ हैं, इस प्रकार की सौगत की आशंका का निरसन करते हुए प्रकरण के उपसंहार को कहते हैं

050) सौगत आदि के मत में भी तत्त्वों का ज्ञान होता है, इस प्रकार की आशंका के होने पर कहते हैं

051) अब इस समय आगम के स्वरूप का निरूपण करते हुए प्रवचन प्रवेश की आदि में और ग्रंथ के मध्य में मंगलभूत इष्ट देवता के गुणों की स्तुति करते हैं

052) अब कहे गये प्रमाण आदि का लक्षण कहते हैं -

053) 'विषय अकारण नहीं होता है' इस बौद्धमत का निराकरण करने के लिए अर्थ को कारण मानने का खंडन करते हैं

054) अनुमान से ज्ञान की उत्पत्ति की सिद्धि हो जावेगी, ऐसी आशंका होने पर आचार्य कहते हैं -

055) अज्ञानरूप भी सन्निकर्ष प्रमाण है इस आशंका का निराकरण करते हुए कहते हैं

056) अब आलोक को ज्ञान के कारणपने का निराकरण करते हुए कहते हैं

057) अर्थ से ज्ञान की उत्पत्ति न मानने पर संपूर्ण अर्थ को प्रकाशित करने का प्रसंग हो जावेगा क्योंकि इनमें कोई अंतर नहीं है, ऐसी आशंका होने पर आचार्य कहते हैं

058) ज्ञान जिस अर्थ से उत्पन्न होता है, जिस आकार का अनुकरण करता है और जिसके विषय में निश्चय को उत्पन्न करता है, उसी विषय में उस ज्ञान की प्रमाणता है किन्तु सर्वत्र नहीं है, ऐसी सौगत की आशंका का आचार्य खंडन करते हैं

059) इसलिए अपने कारण समूहों से उत्पन्न होता हुआ प्रकाशरूप ज्ञान स्वत: ही अर्थ को ग्रहण करने वाला है, अब आचार्य इस बात को कहते है -

060) 'ज्ञानं प्रमाणं आत्मादे:'- अब ज्ञान प्रमाण है वह आत्मा आदि को विषय करता है, इसी ही अर्थ को और स्पष्ट करते हैं

061) इस समय उस प्रमाण की संख्या को कहते हैं

062) अब श्रुत के व्यापार भेद को दिखाते हैं

063) 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग:' इत्यादि वाक्यों में, शास्त्र में अथवा लोक में स्यात्कार का प्रयोग क्यों नहीं किया गया है कि जिससे सर्वत्र वाक्य का अर्थ अनेकांत होवे ? इस प्रकार का आक्षेप होने पर आचार्य कहते हैं

064) वर्ण, पद और वाक्यात्मक शब्द विवक्षा के विषय हैं, पुन: स्यात्कार अर्थापत्ति से कैसे प्रतीति का विषय होगा ? ऐसी आशंका होने पर आचार्य कहते हैं

065) अब नय के भेदों को कहते हैं

066) अब पहले कहे गये भी नैगम आदि नयों को मंदमति वाले शिष्यों के अनुग्रह के लिए पुन: कहने की इच्छा रखते हुए पहले नैगम और नैगमाभास का निरूपण करते हैं

067) अब संग्रहनय और संग्रहाभास को कहते हैं

068) अब व्यवहारनय का निरूपण करते हैं -

069) अब ऋजुसूत्रनय और तदाभास का प्ररूपण करते हैं

070) अब उक्त नयों के विशेषण और विशेष नय स्वरूप को प्रतिपादित करते हैं

071) अब निक्षेप के स्वरूप को निरूपण करते हुए शाध्Eा अध्ययन के फल का निर्देश करते हैं

072) अब पुन: शास्त्र के अध्ययन के फल को दिखलाते हैं -
073) अब पुन: परार्थ संपत्ति का निर्देश करते हैं
074) श्री अभयचंद्रसूरि के उद्गार

!! श्रीसर्वज्ञवीतरागाय नम: !!
स्वामी-श्री-अकलंकाचार्य-देव-विरचित
श्री
लघीयस्त्रय
मूल संस्कृत गाथा, अभयचन्द्र-सूरि कृत टीका सहित
!! नम: श्रीसर्वज्ञवीतरागाय !!
ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नम: ॥1॥
अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका
मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥2॥
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नम: ॥3॥
॥ श्रीपरमगुरुवे नम:, परम्पराचार्यगुरुवे नम: ॥
सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमन: प्रतिबिधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्रीलघीयस्त्रय नामधेयं, अस्य मूलाग्रन्थकर्तार: श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्तार: श्रीगणधरदेवा: प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्य श्रीअकलंकाचार्यदेव विरचितं, श्रोतार: सावधानतया शृणवन्तु ॥
मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

## श्री अकलंक-देव कृत मंगलाचरण

धर्मतीर्थकरेभ्योऽस्तु स्याद्वादिभ्यो नमो नम:
वृषभादिमहावीरान्तेभ्य: स्वात्मोपलब्धये ॥1॥
**अन्वयार्थ** : [धर्मतीर्थकरेभ्य:] धर्मतीर्थ के करने वाले [स्याद्वादिभ्य:] स्याद्वादी, [वृषभादि महावीरांतेभ्य:] वृषभदेव से लेकर महावीर पर्यंत तीर्थंकरों को [स्वात्मोपलब्धये] अपने आत्मस्वरूप की प्राप्ति के लिए [नमो नमोऽस्तु] मेरा पुन:-पुन: नमस्कार होवे ॥१॥

## शंकाकार कहता है कि सर्वथैकांतवादी भी सुगत आदि को धर्म का तीर्थंकर मानना अविरुद्ध ही है क्योंकि बाधक प्रमाण का अभाव है । उनके तीर्थ में भी तो प्रमाण आदि के लक्षण का प्रतिपादन संभव है । ऐसे पक्ष का निराकरण करते हुए स्याद्वादमार्ग की निष्कंटक शुद्धि के लिए आचार्य कहते हैं

सन्तानेषु निरन्वयक्षणिकचित्तानामसत्स्वेव चे-
त्तत्त्वाहेतुफलात्मनां स्वपरसञ्ज्ल्पेन बुद्ध: स्वयम् ॥
सत्त्वार्थं व्यवतिष्ठते करुणया मिथ्याविकल्पात्मक: ।
स्यान्नित्यत्ववदेव तत्र समये नार्थक्रिया वस्तुन: ॥2॥
**अन्वयार्थ** : [तत्त्वाहेतुफलात्मनां] वास्तविक कार्यकारण भाव से रहित [निरन्वयक्षणिकचित्तानां] निरन्वय क्षणिक चित्त-ज्ञानक्षणों की [असत्सु एवं संतानेषु] असत्रूप संततियों में ही [बुद्ध: स्वयं स्वपरसंकल्पेन] बुद्ध स्वयं स्व पर के संकल्प से [मिथ्याविकल्पात्मक:] मिथ्या विकल्प करते हुए [करुणया सत्त्वार्थं] करुणा बुद्धि से प्राणियों के उद्धार के लिए [व्यवतिष्ठते] ठहरते हैं (तो) [नित्यत्ववदेव] नित्यत्व के समान ही [तत्र समये] उस क्षणिक सिद्धांत में [वस्तुन: अर्थक्रिया न स्यात्] वस्तु में अर्थक्रिया नहीं हो सकती है ॥२॥

## इस प्रकार से कण्टक शुद्धि को करके संबंध अभिधेय, अनुष्ठान और इष्टप्रयोजन के निर्देशपूर्वक प्रमाण के लक्षण और भेदों को बतलाने के लिए आगे का सूत्र कहते हैं

प्रत्यक्षं विशदं ज्ञानं। मुख्यसंव्यवहारत:॥
परोक्षं शेषविज्ञानं। प्रमाणे इति संग्रह:॥3॥

**अन्वयार्थ** : [मुख्य संव्यवहारत:] मुख्य और संव्यवहार के भेद से [विशदं ज्ञानं प्रत्यक्षं] विशद ज्ञान प्रत्यक्ष है [शेष विज्ञानं परोक्षं] अविशद ज्ञान परोक्ष है। [प्रमाणे इति संग्रह:] प्रमाण शब्द द्विवचन निर्देश से प्रमाण के दो भेदों का संग्रह हो जाता है॥३॥

## आपने 'प्रत्यक्ष का लक्षण विशद है' ऐसा कहा है, वह ज्ञान की विशदता कैसी है ? ऐसी आशंका होने पर आचार्य कहते हैं

अनुमाद्यतिरेकेण विशेषप्रतिभासनम्।
तद्वैशद्यं मतं बुद्धेरवैशद्यमत: परम् ॥4॥

**अन्वयार्थ** : [अनुमानाद्यतिरेकेण] अनुमान आदि के बिना [विशेष प्रतिभासनं] जो विशेष प्रतिभास होता है [तद् बुद्धे: वैशद्यं मतं] वह ज्ञान की विशदता है [अत: परं अवैशद्यं] इससे भिन्न अविशदता है॥४॥

## अब सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष के कारण और भेद का निर्णय करने के लिए आचार्य कहते हैं -

अक्षार्थयोगे सत्तालोकोऽर्थाकारविकल्पधी:।
अवग्रहे विशेषाकांक्षेहाऽवायो विनिश्चय:॥5॥
धारणा स्मृतिहेतुस्तन्मतिज्ञानं चतुर्विधम्।

**अन्वयार्थ** : [अक्षार्थयोगे] इंद्रिय और पदार्थ का योग होने पर सत्तामात्र का आलोक दर्शन है [अर्थाकारविकल्पधी:] पुन: अर्थ के आकार के विकल्प वाला ज्ञान [अवग्रह] है [अवग्रहे विशेषाकांक्षा ईहा] अवग्रह के विषय में विशेष आकांक्षा का होना ईहा है [विनिश्चय:] विशेष का निश्चय [अवाय:] अवाय है [स्मृति हेतु: धारणा] स्मृति का हेतु धारणा है [तत् मतिज्ञानं चतुर्विधं] वह मतिज्ञान चार प्रकार का है॥५॥ [१/२]

## अब ज्ञान के भेद और प्रमाण तथा फल के व्यवहार को बतलाते हैं -

बह्वाद्यवग्रहाद्यष्टचत्वारिंशत्स्वसंविदाम्॥6॥
पूर्वपूर्वप्रमाणत्वं फलं स्यादुत्तरोत्तरम्॥

**अन्वयार्थ** : [स्वसंविदां] स्वसंवेदन ज्ञानों में [बह्वाद्यवग्रहाद्यष्ट चत्वारिंशत्] बहु आदि बारह भेदों के अवग्रह आदि चार भेद होने से अड़तालीस भेद होते हैं। [इनमें] [पूर्वपूर्वप्रमाणत्वं] पूर्व-पूर्व के ज्ञान प्रमाण हैं और [उत्तरोत्तर] आगे-आगे के ज्ञान [फलं स्यात्] फल हैं॥६॥

## अब प्रमाण के विषय के विसंवाद को दूर करने के लिए आगे कहते हैं -

अथ द्वितीय परिच्छेद:
(प्रमाण विषय)
तद्द्रव्यपर्यायात्मार्थो बहिरन्तश्च तत्त्वत:॥7॥

**अन्वयार्थ** : [तत्त्वत:] परमार्थ से [तद्-द्रव्यपर्यायात्मा] उस प्रमाण का द्रव्य पर्यायात्मक [बहि:अंत: च] बहिरंग और अंतरंग पदार्थ [अर्थ:] विषय है॥७॥

## एकांत में अर्थक्रिया का विरोध ही है, इसी बात को और स्पष्ट करते हैं -

**अर्थ**क्रिया न युज्येत नित्यक्षणिकपक्षयो:।
क्रमाक्रमाभ्यां भावानां सा लक्षणतया मता॥1॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[नित्यक्षणिकपक्षयो:] नित्य और क्षणिक पक्ष में [अर्थ क्रिया न युज्येत] अर्थक्रिया घटित नहीं होती है, [सा] क्योंकि वह अर्थक्रिया [भावानां] पदार्थों में [क्रमाक्रमाभ्यां] क्रम और यौगपद्य के द्वारा [लक्षणतया मता] लक्षणरूप से मानी गई है॥१॥

## एक में अनेकाकार को व्याप्त करके रहना और अनेक अर्थक्रिया को करना कैसे है ? अथवा अनेकत्व में एकत्व कैसे होगा ? क्योंकि विरोध आता है। इस प्रकार की आशंका को निवारण करते हुए श्री भट्टाकलंक देव अनेकांत में विरोध के स्वभाव को दिखलाते हैं -

नाभेदेऽपि विरुध्येत विक्रियाऽविक्रियैव वा॥

**अन्वयार्थ** : [अभेदे अपि] अभेद के होने पर भी [विक्रिया] विविध प्रकार की क्रिया [न विरुध्येत] विरुद्ध नहीं है, [वा अविक्रिया एव] अथवा अविक्रिया भी विरुद्ध नहीं है॥ [१/२]

## वस्तु के इसी अनेकांत स्वरूप का सौगत के द्वारा मान्य चित्रज्ञान के दृष्टांत के बल से समर्थन करते हैं

मिथ्येतरात्मकं दृश्यादृश्यभेदेतरात्मकं॥4॥

चित्तं सदसदात्मैकं तत्त्वं साधयति स्वत:॥

**अन्वयार्थ** : [मिथ्येतरात्मकं] असत्य सत्यात्मक, [दृश्यादृश्ये] दृश्य और अदृश्यरूप तथा [भेदेतरात्मकं] भेद और अभेदरूप [चित्तं] ज्ञान [स्वत: एकं तत्त्वं] स्वत: एक तत्त्व को [सदसदात्मकं]सत् असत् रूप [साधयति] सिद्ध कर देता है॥४॥ [१/२]

## अब इस समय परोक्ष प्रमाण के कारण और भेद को कहते हैं।

ज्ञानमाद्यं मतिस्संज्ञा चिंता चाभिनिबोधनं॥

प्राङ्नामयोजनाच्छेषं श्रुतं शब्दानुयोजनात्॥1॥

**अन्वयार्थ** : [ज्ञानं मति:] मतिज्ञान, [संज्ञा चिंता च आभिनिबोधिकं] संज्ञा, चिंता और आभिनिबोधिक ज्ञान [नामयोजनात् प्राङ्] नाम योजना से पहले [आद्यं] आदि के सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष हैं और [शब्दानुयोजनात्] शब्द योजना होने पर [श्रुतं शेषं] श्रुत हैं अत: परोक्ष हैं॥ १॥

## अविनाभाव का प्रत्यक्ष अथवा अनुमान से निर्णय हो जाता है। पुन: तर्क नाम के एक भिन्न प्रमाण को क्यों आपने कल्पित किया है ? ऐसी आशंका होने पर आचार्य कहते हैं -

अविकल्पधिया लिंगं न किन्चित्संप्रतीयते।

नानुमानादसिद्धत्वात् प्रमाणांतरमांजसं॥2॥

**अन्वयार्थ** : [अविकल्पधिया] निर्विकल्प ज्ञान से [विंâचित् लिंगं न प्रतीयते] कुछ हेतु लिंग प्रतीति में नहीं होता है। [अनुमानात् न] अनुमान से भी वह प्रतीत नहीं होता है [असिद्धत्वात्] क्योंकि वह असिद्धरूप है, [आंजसं प्रमाणांतरं] अत: वास्तविक प्रमाणांतर सिद्ध हो जाता है॥२॥

## पुन: अनुमान प्रमाण क्या है ? ऐसा प्रश्न होने पर इस सूत्र को कहते हैं -

लिंगात्साध्याविनाभावाभिनिबोधैकलक्षणात्।

लिंगिधीरनुमानं तत्फलं हानादिबुद्धय:॥3॥

**अन्वयार्थ** : [साध्याविनाभावाभिनिबोधैकलक्षणात्] साध्य के साथ अविनाभाव के निर्णयरूप एक प्रधान लक्षण वाले [लिंगात्] हेतु से [लिंगिधी:] साध्य का ज्ञान [अनुमानं] अनुमान है और [हानादिबुद्धय:] हान-उपादान आदि बुद्धि का होना [तत् फलं] उसका फल है॥३॥

## तादात्म्य और तदुत्पत्ति से अविनाभाव होता है इसलिए व्यापक का व्याप्य ही लिंग है और कारण का कार्य ही लिंग है। इस प्रकार विधि हेतु दो प्रकार के ही हैं। इस तरह सौगत के विसंवाद का निराकरण करते हुए

## कारण को भी लिंगत्व हेतुपना सिद्ध करते हैं

चंद्रादेर्जलचंद्रादिप्रतिपत्तिस्तथाऽनुमा॥4॥

**अन्वयार्थ** : [तथा] उसी प्रकार [चंद्रादे:] चंद्र आदि से [जलचंद्रादिप्रतिपत्ति:] जल में चंद्र आदि का ज्ञान होना भी [अनुमा] अनुमान ज्ञान है॥४॥

## अब पूर्वचर को भी हेतुपना सिद्ध करते हुए कहते हैं

भविष्यत्प्रतिपद्येत शकटं कृत्तिकोदयात्॥

श्व आदित्य उदेतेति ग्रहणं वा भविष्यति॥5॥

**अन्वयार्थ** : [कृत्तिकोदयात्] कृत्तिकोदय हेतु से [भविष्यत् शकटं] भविष्य में होने वाला रोहिणी नक्षत्र [प्रतिपद्येत] जाना जाता है। [श्व: आदित्य: उदेता] आगे कल सूर्य उदित होगा [वा] अथवा [ग्रहणं] सूर्य का ग्रहण [भविष्यति] होवेगा [इति] इस प्रकार ज्ञान होता है॥५॥

## अब दृश्यानुपलब्धि ही निषेध साधन है, अदृश्यानुपलब्धि नहीं है, इस एकांत का निराकरण करते हुए कहते हैं

अदृश्यपरचित्तादेरभावं लौकिका विदु:।

तदाकारविकारादेरन्यथानुपपत्तित:॥6॥

**अन्वयार्थ** : [अदृश्य पर चित्तादे:] नहीं दिखने योग्य ऐसे अन्य के चैतन्य आदि के [अभावं] अभाव को [लौकिका: विदु:] लौकिकजन भी जानते हैं [तदाकारविकारादे:] क्योंकि उसके आकार [उष्णस्पर्श, उच्छ्वास] आदि के विकार [अन्यथानुपपत्तित:] अन्य प्रकार से नहीं हो सकता है॥६॥

## स्याद्वादियों के यहाँ भी अनेकांतात्मक तत्त्व प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध होने से अनुमान प्रमाण की विफलता का प्रसंग आ जाता है, इस प्रकार की आशंका होने पर आचार्य अगली कारिका को कहते हैं

वीक्ष्याणुपारिमांडल्यक्षणभंगाद्यवीक्षणं॥

स्वसंविद्विषयाकारविवेकानुपलंभवत्॥7॥।

**अन्वयार्थ** : [वीक्ष्याणुपारिमांडल्य क्षण भंगाद्यवीक्षणं] स्थूल के अणुओं की गोलाई और क्षण-क्षण में नाश होना आदि दिखते नहीं हैं [स्वसंविद्विषयाकार विवेकानुपलम्भवत्] जैसे स्वसंवेदन के विषयाकार के भेद की उपलब्धि नहीं होती है॥७॥

## बौद्ध के मत में 'अनुपलब्धि हेतु मत सिद्ध होवे किन्तु कार्य हेतु और स्वभाव हेतु ये दो हेतु होवेंगे परन्तु वे दोनों हेतु भी नहीं घटते हैं, आचार्य ऐसा कहते हैं

अनंशं बहिरंतश्च प्रत्यक्षं तदभासनात्।

कस्तत्स्वभावो हेतु: स्यात्किं तत्कार्यं यतोऽनुमा॥8॥

**अन्वयार्थ** : [बहिरंत: च अनंशं] बहिरंग और अंतरंग निरंश तत्त्व [अप्रत्यक्षं] प्रत्यक्ष नहीं है [तत्अभासनात्] क्योंकि वह प्रतिभासित नहीं होता है पुन: [तत्स्वभाव: क: हेतु:] उस अनंश का कौन स्वभाव हेतु [स्यात्] होगा [तत्कार्यं किं] और उसका क्या कार्य होगा [यत: अनुमा] कि जिससे अनुमान [स्यात्] हो सके अर्थात् नहीं हो सकता है॥८॥

## और दूसरी बात यह है कि अनुमान विकल्पात्मक है वह सौगत के मत में सिद्ध ही नहीं हो सकता है, ऐसा प्रतिपादन करते हैं

धीर्विकल्पाविकल्पात्मा बहिरंतश्च किं पुन:॥

निश्चयात्मा स्वत: सिद्ध्यत्परतोऽप्यनवस्थिते:॥9॥

**अन्वयार्थ** : [बहि: अंत: च] बहिरंग और अंतरंग पदार्थ में [विकल्पाविकल्पात्मा] विकल्परूप और अविकल्पस्वरूप [निश्चयात्मा धी:]

अनुमान ज्ञान [किं पुन: स्वत: सिद्ध्येत्] क्या पुन: स्वत: सिद्ध हो सकता है [परतोऽपि] पर से भी (क्या पुन: सिद्ध हो सकता है ?) [अनवस्थिते:] क्योंकि अनवस्था आती है॥९॥

## आप जैन के यहाँ भी प्रमाण के दो विध का नियम नहीं टिकता है क्योंकि आपने उपमान नाम के एक भिन्न प्रमाण को संगृहीत नहीं किया है। इस प्रकार से कहने वाले नैयायिक आदि की व्यवस्था को आड़े हाथ लेते हुए उनके मत में भी संख्या के नियम को विघटित करते हैं

उपमानं प्रसिद्धार्थसाधम्र्यात्साध्यसाधनं॥
तद्वैधम्र्यात्प्रमाणं विंâ स्यात्संज्ञिप्रतिपादनं॥10॥

**अन्वयार्थ** : [प्रसिद्धार्थ साधम्र्यात् साध्यसाधनं] प्रसिद्ध अर्थ की सदृशता से साध्य को सिद्ध करने वाला [उपमानं] उपमान है। पुन: [वैधम्र्यात्] विसदृशता से (होने वाला साध्य का ज्ञान) [तत् किं प्रमाणं स्यात्] वह क्या प्रमाण होगा ? [संज्ञिप्रतिपादनं] तथा संज्ञी-वाच्य का प्रतिपादन करने वाला ज्ञान संज्ञा-संज्ञी का संबंध ज्ञान [तत् किं प्रमाणं स्यात्] वह क्या प्रमाण होगा ?॥१०॥

## इसी उपर्युक्त कथन का ही समर्थन करते हैं

प्रत्यक्षार्थांतरापेक्षा संबंधप्रतिपद्यत:॥
तत्प्रमाणं न चेत्सर्वमुपमानं कुतस्तथा॥11॥

**अन्वयार्थ** : [यत:] जिस ज्ञान से [प्रत्यक्षार्थान्तरापेक्षा] प्रत्यक्ष से भिन्न अर्थ की अपेक्षा रखने वाला [संबंध प्रतिपत्] वाच्य-वाचक भावरूप संबंध का ज्ञान होता है [चेत् तत् प्रमाणं न] यदि वह ज्ञान प्रमाण नहीं है, तो [तथा सर्वं उपमानं कुत:] उसी प्रकार से सभी उपमान प्रमाण कैसे होंगे ?॥११॥

## न केवल ये ही प्रमाणांतर है अपितु अन्य भी हैं, ऐसा दिखलाते हैं

इदमल्पं महद् दूरमासन्नं प्रांशु नेति वा॥
व्यपेक्षात: समक्षेऽर्थे विकल्प: साधनांतरं॥12॥

**अन्वयार्थ** : [इदं अल्पं महत्] यह अल्प है, बहुत है, [दूरं आसन्नं] दूर है, निकट है, [प्रांशुं वा न ति] यह दीर्घ है अथवा दीर्घ नहीं है-ह्रस्व है, इस प्रकार [व्यपेक्षात:] अपेक्षा से [समक्षे अर्थे] प्रत्यक्ष अर्थ में [विकल्प:] जो विकल्प हैं [साधनांतरं] वे प्रमाणांतर हैं॥१२॥

## इस प्रकार सम्यग्ज्ञान लक्षण प्रमाण, प्रत्यक्ष-परोक्ष भेद, द्रव्य पर्यायात्मक अर्थ विषय और अज्ञाननिव्रत्ति आदि फल, इन चारों को प्रतिपादित करके इस समय प्रमाणाभास का निरूपण करते हुए कहते हैं -

चतुर्थ परिच्छेद
(प्रमाणाभास)

प्रत्यक्षाभं कथंचित्स्यात्प्रमाणं तैमिरादिकं॥
यद्यथैवाविसंवादि प्रमाणं तत्तथा मतं॥1॥

**अन्वयार्थ** : [प्रत्यक्षाभं] प्रत्यक्षाभास [तैमिरादिकं] तैमिर आदि ज्ञान [कथंचित्] कथंचित् [प्रमाणं स्यात्] प्रमाण हैं, [यत्] जो ज्ञान [यथा एव] जिस प्रकार से ही [अविसंवादि] अविसंवादी है [तत्] वह [तथा] उसी प्रकार से [प्रमाणं मतं] प्रमाण माना गया है॥१॥

## इस समय जो सौगतों ने विकल्पज्ञान को प्रत्यक्षाभास कल्पित किया है, उसका निराकरण करते हुए कहते हैं

स्वसंवेद्यं विकल्पानां विशदार्थावभासनं॥
संहृताशेषचिंतायां सविकल्पावभासनात्॥2॥

**अन्वयार्थ** : [विकल्पानां] विकल्पों में [विशदार्थावभासनं] विशद अर्थ को प्रतिभासित करने वाला ज्ञान [स्वसंवेद्यं] स्वसंवेद्य है, [संहृताशेषचिंतायां] वह अशेष विकल्पों के नष्ट हो जाने पर [सविकल्पावभासनात्] सविकल्प रूप के प्रतिभास से होता है॥२॥

## स्वसंवेदन आदि प्रत्यक्ष ज्ञान में विकल्प नहीं हैं क्योंकि वे दिखते नहीं हैं, इस पक्ष का निराकरण करते हुए कहते हैं

प्रतिसंविदितोत्पत्तिव्यया: सत्योऽपि कल्पना:॥
प्रत्यक्षेषु न लक्षेरंस्तत्स्वलक्षणभेदवत्॥3॥

**अन्वयार्थ** : [ प्रतिसंविदितोत्पत्तिव्यया:] प्रत्येक में अनुभव में आते हुए उत्पत्ति और व्ययरूप [कल्पना:] विकल्प [सत्य: अपि] विद्यमान होते हुए भी [प्रत्यक्षेषु] प्रत्यक्ष ज्ञानों में [तत् न लक्षेरन्] वे लक्षित नहीं होते हैं [स्वलक्षण भेदवत्] जैसे स्वलक्षण में भेद नहीं जाना जाता है॥३॥

## इसी का समर्थन करते हुए कहते हैं -

अक्षधीस्मृतिसंज्ञाभिश्चिंतयाऽऽभिनिबोधिकै:॥
व्यवहाराविसंवादस्तदाभासस्ततोऽन्यथा॥4॥

**अन्वयार्थ** : [अक्षधी:] इंद्रियज्ञान-मतिज्ञान [स्मृतिसंज्ञाभि:] स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, [चिंतया] तर्क और [आभिनिबोधकै:] अनुमान ज्ञानों के द्वारा [व्यवहाराविसंवाद:] व्यवहार में अविसंवादी है (अत: प्रमाण हैं) [तत:] इनसे [अन्यथा] अन्य प्रकार से-व्यवहार में विसंवादी होने से [तदाभास:] प्रमाणाभास हैं॥४॥

## अब इस समय श्रुतज्ञान में प्रमाण आरै प्रमाणाभास की व्यवस्था को प्रतिपादित करते हैं -

प्रमाणं श्रुतमर्थेषु सिद्धं द्वीपांतरादिषु॥
अनाश्वासं न कुर्वीरन् क्कचित्तद्व्यभिचारत:॥5॥

**अन्वयार्थ** : [द्वीपांतरादिषु] द्वीपान्तर आदि [अर्थेषु] पदार्थों में [श्रुतं] श्रुतज्ञान [प्रमाणं सिद्धं] प्रमाण सिद्ध है [क्वचित् तद् व्यभिचारत:] कहीं पर उसमें व्यभिचार होने से [अनाश्वासं] अविश्वास [न कुर्वीरन्] नहीं करना चाहिए॥५॥

## श्रुत को सर्वत्र अप्रमाण की आशंका करने पर अतिप्रसंग दोष को दिखलाते हैं

प्राय: श्रुतेर्विसंवादात्प्रतिबंधमपश्यतां।
सर्वत्र चेदनाश्वास: सोऽक्षलिंगधियां सम:॥6॥

**अन्वयार्थ** : [प्राय: श्रुते: विसंवादात्] कदाचित् आगम में विसंवाद होने से [प्रतिबंधं अपश्यतां] शब्द और अर्थ के संबंध को नहीं जानने वालों को [चेत् सर्वत्र अनाश्वास:] यदि सभी आगम में अविश्वास है तो [स:] वह अविश्वास [अक्षलिंगधियां सम:] इंद्रिय ज्ञान और अनुमान ज्ञान में समान है॥६॥

## सर्वत्र श्रुत में अविश्वास होने पर और भी अनिष्ट को बताते हैं

आप्तोक्तेर्हेतुवादाच्च बहिरर्थाविनिश्चये॥
सत्येतरव्यवस्था का साधनेतरता कुत:॥7॥

**अन्वयार्थ** : [ आप्तोक्ते:] आप्त के वचन से [हेतुवादात् च] और हेतुवाद से [बहि: अर्थाविनिश्चये] बाह्य अर्थ का निश्चय न मानने पर तो [सत्येतर व्यवस्था का] सत्य-असत्य की व्यवस्था क्या होगी ? और [साधनेतरता कुत:] साधन-असाधन की व्यवस्था कैसे होगी ?॥७॥

## सुगत के वचन को भी अप्रमाणता हो जावे क्योंकि प्रत्यक्ष और अनुमान को ही प्रमाणता है क्योंकि पुरुषों के विचित्र अभिप्राय होने से अर्थ में व्यभिचार आता है, इस प्रकार की दाशबल की शंका का निरसन करते हैं

पुंसश्चित्राभिसंधेश्चेद्वागर्थव्यभिचारिणी॥
कार्यं दृष्टं विजातीयाच्छक्यं कारणभेदि किं॥8॥

**अन्वयार्थ** : [चेत् चित्राभिसंधे:] यदि नाना अभिप्राय से [पुंस: वाक् अर्थ व्यभिचारिणी] पुरुष के वचन अर्थ को व्यभिचारित करते हैं, तब

तो [विजातीयात् कार्यं दृष्टं] विजातीय कारण से कार्य विरोध रहित हो जावेगा [कारण भेदि किम् शक्यं] पुन: कारण में भेद करना क्या शक्य होगा ?॥८॥

## अब इस समय प्रमाण और प्रमाणाभास की परीक्षा करके नय और नयाभास के लक्षण की परीक्षा के लिए कहते हैं

पंचम परिच्छेद

(नय एवं नयाभास)

नमो नमन्मरुन्मौलिमिलत्पदनखांशवे॥

स्वांतध्वांतप्रतिध्वंस प्रशंसाय जिनांशवे॥1॥

अथेदानीं प्रमाणं तदाभासं परीक्ष्य नयतदाभासलक्षणपरीक्षार्थमाह—

भेदाभेदात्मके ज्ञेये भेदाभेदाभिसंधय:॥

एतेऽपेक्षानपेक्षाभ्यां लक्ष्यंते नयदुर्नया:॥1॥

**अन्वयार्थ** : अर्थ-नमस्कार करते हुए देवों के मुकुट से स्पर्शित है चरण नख किरणें जिनकी, ऐसे हृदय के अंधकार को ध्वंस करने में प्रशंसित जिन चंद्रमा को मेरा नमस्कार होवे॥१॥

**अन्वयार्थ**-[भेदाभेदात्मके ज्ञेये] भेदाभेदात्मक ज्ञेय पदार्थ में [भेदाभेदाभिसंधय:] जो भेद और अभेदरूप अभिप्राय हैं [एते] ये [अपेक्षानपेक्षाभ्यां] अपेक्षा और अनपेक्षा के द्वारा [नयदुर्नया:] नय और दुर्नयरूप [लक्ष्यंते] निश्चित किये जाते हैं॥१॥

## देश, काल और आकार के भेद से अत्यंत भिन्न ही भाव परमार्थसत् हैं किन्तु सत् सामान्य नहीं हैं। इस प्रकार की बौद्ध की मान्यता का निराकरण करते हुए कहते हैं-

जीवाजीवप्रभेदा यदंतर्लीनास्तदस्ति सत्।

एकं यथा स्वनिर्भासि ज्ञानं जीव: स्वपर्ययैः॥2॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[जीवाजीवप्रभेदा:] जीव और अजीव के प्रभेद [यत् अंतर्लीना:] जिसके अंतर्लीन हैं [तत् सत् अस्ति] वह सत् है। [यथा] जैसे [स्वनिर्भासि] स्वनिर्भासी [एकं ज्ञानं] एक ज्ञान और [स्वपर्ययै:] अपनी पर्यायों से [जीव:] जीव एक है॥२॥

## उस सत्सामान्य के नय का निरूपण करते हैं

शुद्धं द्रव्यमभिप्रैति संग्रहस्तदभेदत:।

भेदानां नासदात्मैकोऽप्यस्ति भेदो विरोधत:॥3॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[संग्रह: तदभेदत:] संग्रहनय उस सामान्य के अभेद से [शुद्धं द्रव्यं] शुद्ध द्रव्य को [अभिप्रैति] स्वीकार करता है। [भेदानां] भेदों में [असदात्मा] असत्स्वरूप [एक: अपि भेद:] एक भी भेद [न अस्ति] नहीं है॥३॥

## प्रत्यक्ष से भेद सिद्ध है पुन: अभेद नयरूप संग्रह मिथ्या है क्योंकि प्रत्यक्ष से बाधित है। इस प्रकार की सौगत की विचारधारा का निराकरण करते हुए कहते हैं

प्रत्यक्षं बहिरंतश्च भेदाज्ञानं सदात्मना॥

द्रव्यं स्वलक्षणं शंसेद्भेदात्सामान्यलक्षणात्॥4॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[भेदाज्ञानं प्रत्यक्षं] भेद को नहीं ग्रहण करने वाला प्रत्यक्ष ज्ञान [सदात्मना] सत्रूप से [बहि: अंत: च] बहिरंग और अंतरंग पदार्थ में [सामान्य लक्षणात्] सामान्य लक्षण वाले [भेदात्] भेद से [द्रव्यं स्वलक्षणं] द्रव्य को वस्तुभूत [शंसेत्] कहता है॥४॥

## इस प्रकार सत्सामान्य लक्षण शुद्ध द्रव्य का समर्थन करके अब ऊर्ध्वता सामान्य लक्षण अशुद्ध द्रव्य का समर्थन करते हैं

सदसत्स्वार्थनिर्भासै: सहक्रमविवर्तिभि:॥
दृश्यादृश्यैर्विभात्येकं भेदै: स्वयमभेदकैः॥5॥
**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-जैसे [सदसत् स्वार्थ निर्भासै:] सत्-असत् रूप और अर्थ के आकार से [एकं] ज्ञान एक है, वैसे ही [स्वयं अभेदवैâ:] स्वरूप से भेद नहीं करने वाले ऐसे [सहक्रम विवर्तिभि:] सहभावी और क्रमभावी से तथा [दृश्यादृश्यै:] व्यंजन पर्याय और अर्थ पर्यायों से [एकं विभाति] एक द्रव्य प्रतिभासित होता है॥५॥

## कार्य कारण का भिन्न काल होने से क्षणिक में ही अर्थक्रिया संभव है नित्य में नहीं, इस प्रकार के बौद्ध के वाक्यों को शोधन करते हुए कहते हैं

कार्योत्पत्तिर्विरुद्धा चेत्स्वयंकारणसत्तया॥
युज्येत क्षणिकेऽर्थेऽर्थक्रियासंभवसाधनम्॥6॥
**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[चेत् स्वयं कारणसत्तया] यदि स्वयं कारण की सत्ता से [कार्योत्पत्ति: विरुद्धा:] कार्य की उत्पत्ति विरुद्ध होवे, तब [क्षणिके अर्थे] क्षणिक अर्थ में [अर्थक्रिया संभव साधनं] अर्थक्रिया का होना सिद्ध [युज्येत] किया जा सके॥६॥

## एक ही अनेक कार्य को करने वाला और धर्मों में व्याप्त होकर रहने वाला कैसे हो सकता है क्योंकि परस्पर में विरोध है ? इस आशंका का निराकरण करते हुए कहते हैं

यथैकं भिन्नदेशार्थान्कुर्याद् व्याप्नोति वा सकृत्॥
तथैकं भिन्नकालार्थान्कुर्याद् व्याप्नोति वा क्रमात्॥7॥
**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[यथा एकं] जैसे एक-क्षणिक स्वलक्षण [सकृत्] एक क्षण में [भिन्नदेशार्थान्] भिन्न देश वाले कार्यों को [कुर्यात्] करता है [वा] अथवा [व्याप्नोति] व्याप्त करता है [तथा] वैसे ही [एकं] एक द्रव्य [क्रमात्] क्रम से [भिन्न कालार्थान्] भिन्न कालवर्ती कार्यों को [कुर्यात्] करता है [वा व्याप्नोति] अथवा उनको व्याप्त करता है॥७॥

## इस प्रकार सत्सामान्य रूप पर द्रव्य को और उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य से युक्त अपर द्रव्य को प्रतिपादित करके उसमें पर द्रव्य को विषय करने वाले परसंग्रह को और तदाभास को दिखलाते हुए कहते हैं

संग्रह: सर्वभेदैक्यमभिप्रैति सदात्मना॥
ब्रह्मावादस्तदाभास: स्वार्थभेदनिराकृते:॥8॥
**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[संग्रह:] संग्रह नय [सदात्मना] सत्रूप से [सर्वभेदैक्यं] सभी भेदों में ऐक्य को [अभिप्रैति] स्वीकार करता है किन्तु [ब्रह्मवाद:] ब्रह्माद्वैतवाद [तदाभास:] संग्रहाभास है [स्वार्थ भेदनिराकृते:] क्योंकि वह अपने और अर्थ के भेदों का निराकरण करता है॥८॥

## अब इस समय नैगमनय और तदाभास का निरूपण करते हैं

अन्योन्यगुण भूतैकभेदाभेदप्ररूपणात्॥
नैगमोऽर्थांतरत्वोक्तौ नैगमाभास इष्यते॥9॥
**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[अन्योन्यगुणभूतैकभेदाभेद प्ररूपणात्] परस्पर में गौणभूत और प्रधानभूत भेद तथा अभेद का प्ररूपण करने से [नैगम:] नैगमनय है। [अर्थांतरोक्तौ] और द्रव्य से गुणादि को भिन्न कहने पर [नैगमाभास:] नैगमाभास [इष्यते] माना जाता है॥९॥

## गुण-गुणी आदि में समवाय संबंध है ही है इस प्रकार के यौगमत का निराकरण करते हुए कहते हैं

स्वतोऽर्था: संतु सत्तावत्सत्तया किं सदात्मनां॥
असदात्मसु नैषा स्यात्सर्वथाऽतिप्रसंगत:॥10॥
**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[ सत्तावत् अर्था: स्वत: संतु] सत्ता के समान पदार्थ स्वत: विद्यमान होवें, पुन: [सदात्मनां सत्तया किं] सत्रूप पदार्थों में सत्ता से क्या प्रयोजन है ? [असदात्मसु एषा न स्यात्] असत् रूप पदार्थों में भी वह सत्ता नहीं हो सकती है [सर्वथा अतिप्रसंगत:] सब

प्रकार से अतिप्रसंग दोष आता है॥१०॥

### ब्रह्मवाद और भेदवाद में भी प्रमाण आदि व्यवहार संभव हैं अत: वे संग्रहावास और नैगमाभास कैसे हैं ? इस प्रकार के आक्षेप को समाप्त करते हुए कहते हैं

प्रामाण्यं व्यवहाराद्धि स न स्यात्तत्त्वतस्तयो:।
मिथ्यैकांते विशेषो वा क: स्वपक्षविपक्षयो:॥11॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[व्यवहारात् हि प्रामाण्यं] निश्चित रूप से व्यवहार से प्रमाणता होती है। [तयो:] इन ब्रह्मवाद और भेद में [स: तत्त्वत: न स्यात्] वह व्यवहार वास्तविक नहीं है। [वा] अथवा [मिथ्यैकांते] इस व्यवहार को एकांत से मिथ्या मानने पर [स्वपक्ष विपक्षयो:] स्वपक्ष और विपक्ष में [का विशेष:] क्या अंतर रहेगा ?॥११॥

### अब उनके सुनयत्व को प्रतिपादित करते हैं

व्यवहारोऽविसंवादी नय: स्याद्दुर्नयोऽन्यथा।
बहिरर्थोऽस्ति विज्ञप्तिमात्रशून्यमितीदृश:॥12॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[बहि: अर्थ: अस्ति] 'बाह्य पदार्थ है' ऐसा [अविसंवादी व्यवहार:] अविसंवादी व्यवहार [नय:] स्यात् नय है। [अन्यथा] अन्य प्रकार से [विज्ञप्तिमात्र शून्यं] तत्त्व विज्ञानमात्र या शून्यमात्र है [इति ईदृश:] इस प्रकार ऐसा व्यवहार [दुर्नय:] दुर्नय है॥ १२॥

### अब ऋजुसूत्र नय का निरूपण करते हैं

ऋजुसूत्रस्य पर्याय: प्रधानं चित्रसंविद:॥
चेतनाणुसमूहत्वात्स्याद्भेदानुपलक्षणं॥13॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[ऋजुसूत्रस्य प्रधानं पर्याय:] ऋजुसूत्र का विषय पर्याय है और [चित्रसंविद:] चित्रज्ञान में [चेतनाणुसमूहत्वात्] ज्ञान के अंशों का समूह होने से उसमें [भेदानुपलक्षणं स्यात्] भेद उपलक्षित नहीं होता है॥१३॥

### अब शब्द, समभिरूढ़ और इत्यंभूत इन तीनों नयों का भी निरूपण करते हैं

कालकारकलिंगानां भेदाच्छब्दार्थभेदकृत्॥
अभिरूढस्तु पर्यायैरित्थंभूत: क्रियाश्रय:॥14॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[कालकारकलिंगानां] काल, कारक और लिंगों के [भेदात्] भेद से [शब्दार्थ भेद कृत्] अर्थ में भेद को करने वाला शब्दनय है [पर्यायै: तु अभिरूढ़:] और पर्यायवाची शब्दों से भेद करने वाला समभिरूढ़नय है तथा [क्रियाश्रय: इत्थंभूत:] क्रिया के आश्रय से भेद करने वाला एवंभूतनय है॥१४॥

### शब्द और अर्थ में संकेत ग्रहण का अभाव होने से शब्द के भेद से अर्थ में भेद कैसे हो सकता है ? प्रत्यक्ष से संकेत का ग्रहण होने पर भी वह व्यवहार में उपयोगी नहीं है क्योंकि गृहीत और संकेत उसी समय नष्ट हो जाते हैं। स्मृति भी संकेत को विषय नहीं करती है क्योंकि वे दोनों अतीत हो चुके हैं। इस प्रकार सौगत की आशंका का निराकरण करते हुए आचार्य कहते हैं

अक्षबुद्धिरतीतार्थं वेत्ति चेन्न कुत: स्मृति:॥
प्रतिभासभिदैकार्थे दूरासन्नाक्षबुद्धिवत्॥15॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[चेत् अक्षधी:] यदि इंद्रियज्ञान [अतीतार्थं] अतीत अर्थ को [वेत्ति] जानता है तब तो [दूरासन्नार्थबुद्धिवत्] दूर और निकटवर्ती पदार्थ के ज्ञान के समान [एकार्थे] एक विषय में [प्रतिभासमिदा] प्रतिभास के भेद से [स्मृति: कुत: न] स्मृति ज्ञान प्रमाण कैसे नहीं होगा ?॥१५॥

## शब्द और अर्थ में संबंध का अभाव होने से शब्द की प्रमाणता कैसे होगी ? कि जिससे उसके विषय में शब्दादिक नय समीचीन होवें ? ऐसी आशंका का निराकरण करते हुए आचार्य कहते है

अक्षशब्दार्थविज्ञानमविसंवादत: समं।

अस्पष्टं शब्दविज्ञानं प्रमाणमनुमानवत्॥16॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[अक्षशब्दार्थविज्ञानं] इंद्रिय से होने वाला अर्थ का ज्ञान और शब्द से होने वाला अर्थ का ज्ञान [अविसंवादत:] ये दोनों अविसंवाद की अपेक्षा से [समं] समान हैं, [शब्दज्ञानं] शब्दज्ञान [अनुमानवत्] अनुमान के समान [अस्पष्टं] अस्पष्ट [प्रमाणं] प्रमाण है॥१६॥

## काल, कारक और लिंग के भेद से शब्द अर्थ में भेद करने वाला है यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि उसको ग्रहण करने वाले प्रमाण का अभाव है। ऐसी आशंका का निरसन करते हुए आचार्य कहते हैं

कालादिलक्षणं न्यक्षेणान्यत्रेक्ष्यं परीक्षितं।

द्रव्यपर्यायसामान्यविशेषात्मार्थनिष्ठितम्॥17॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[कालादिलक्षणं] काल आदि के लक्षण को [न्यक्षेण] विस्तार से [अन्यत्र परीक्षितं] अन्य ग्रंथों में परीक्षित को [ईक्ष्यं] देख लेना चाहिए [द्रव्यपर्याय सामान्य विशेषात्मार्थ निष्ठितं] जो कि द्रव्य-पर्याय और सामान्य विशेषरूप पदार्थ में विद्यमान है॥१७॥

## एकांत में भी एक में षट्कारक की व्यवस्था का होना कैसे घट सकता है ? ऐसी आशंका के होने पर आचार्य कहते हैं

एकस्यानेकसामग्रीसन्निपातात्प्रतिक्षणं॥

षट्कारकी प्रकल्प्येत तथा कालादिभेदत:॥18॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[एकस्य] एक में [अनेक सामग्री सन्निपातात्] अनेक सामग्री के सन्निधान से [प्रतिक्षणं]प्रतिक्षण [षट्कारकी] षट् कारकों की [प्रकल्प्येत] कल्पना होती है, [तथा कालादिभेदत:] वैसे ही काल आदि के भेद से भी षट्कारक की व्यवस्था होती है॥१८॥

## नय विकल्पात्मक है इसलिए वे तत्त्वों के ज्ञान की सिद्धि नहीं करा सकते हैं। जैसेस्मृति आदि तत्त्वों के ज्ञान को कराने में असमर्थ हैं, इस प्रकार की सौगत की आशंका का निरसन करते हुए प्रकरण के उपसंहार को कहते हैं

व्याप्तिं साध्येन हेतो: स्फुटयति न विना चिंतयैकत्रदृष्टि:।

साकल्येनैष तर्कोऽनधिगतविषयस्तत्कृतार्थैकदेशे॥

प्रामाण्ये चानुमाया: स्मरणमधिगतार्थादि1संवादि सर्वं।

संज्ञानं च प्रमाणं समधिगतिरत: सप्तधाख्यैर्नयौघै:॥19॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[दृष्टि:] प्रत्यक्षज्ञान [एकत्र] एक जगह [चिंतया बिना] तर्क के बिना [साध्येन हेतो:व्याप्तिं] साध्य के साथ हेतु की व्याप्ति को [न स्फुटयति] स्फुट नहीं कर सकता है, [एष: तर्को] यह तर्क [साकल्येन] सकलरूप से [अनधिगत विषय:] नहीं जाने हुए को विषय करने वाला है। [तत्कृतार्थैकदेशे] उसके द्वारा निश्चित विषय के एकदेश में [अनुमाया: च प्रामाण्येन] अनुमान की प्रमाणता होने पर [स्मरणमधिगतार्था दिसंवादि] स्मृति भी अधिगत अर्थादि के विषय में संवादी हैं [सर्वं संज्ञानं च प्रमाणं] और सभी प्रत्यभिज्ञान प्रमाण हैं [अत: सप्तधाख्यै तथौघै:] इसलिए सात प्रकार के नय समूहों से [समाधिगति:] सम्यक् प्रकार से ज्ञान होता है॥१९॥

## सौगत आदि के मत में भी तत्त्वों का ज्ञान होता है, इस प्रकार की आशंका के होने पर कहते हैं

सर्वज्ञाय निरस्तबाधकधिये स्याद्वादिने ते नम-।

स्तात्प्रत्यक्षमलक्षयन् स्वमतमभ्यस्याप्यनेकांतभाक्॥

तत्त्वं शक्यपरीक्षणं सकलविन्नैकांतवादी तत:।

प्रेक्षावानकलंक याति शरणं त्वामेव वीरं जिनम्॥20॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[स्याद्वादिने] स्याद्वादी [निरस्तबाधक धिये] ज्ञानावरणादि बाधक कारणों से रहित ऐसे ज्ञान वाले [ते सर्वज्ञाय नमस्तात्] आप सर्वज्ञ को नमस्कार होवे। [एकांतवादी] एकांतवादी बुद्ध आदि [स्वमतं अभ्यस्त अपि] अपने मत का अभ्यास करके भी [शक्य परीक्षणं] जिसका परीक्षण करना शक्य है ऐसे [अनेकांतभाव] अनेकांतात्मक [प्रत्यक्षं] प्रत्यक्षरूप [तत्त्वं] तत्त्व को [अलक्षयन्] नहीं जानते हुए [सकलवित् न] सर्वज्ञ नहीं हैं। [तत:] इसलिए [अकलंक] हे कर्मकलंकरहित अकलंक देव! [प्रेक्षावान्] बुद्धिमानजन [त्वां जिनं वीरं एवं] आप जिनेन्द्र भगवान वीरप्रभु की ही [शरणं याति] शरण में आते हैं॥२०॥

## अब इस समय आगम के स्वरूप का निरूपण करते हुए प्रवचन प्रवेश की आदि में और ग्रंथ के मध्य में मंगलभूत इष्ट देवता के गुणों की स्तुति करते हैं

प्रणिपत्य महावीरं स्याद्वादेक्षणसप्तकं।

प्रमाणनयनिक्षेपानभिधास्ये यथागमं॥1॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[ स्याद्वादेक्षणसप्तकं] स्यात् अस्ति आदि सप्तभंग रूप स्याद्वाद के अवलोकन करने वाले [महावीरं] अंतिम तीर्थंकर महावीर भगवान को [प्रणिपत्य] नमस्कार करके [प्रमाण नयनिक्षेपात्] मैं प्रमाण नय और निक्षेपों को [यथागमं] आगम के अनुसार [अभिधास्ये] कहूँगा॥१॥

## अब कहे गये प्रमाण आदि का लक्षण कहते हैं -

ज्ञानं प्रमाणमात्मादेरुपायो न्यास इष्यते॥

नयो ज्ञातुरभिप्रायो युक्तितोऽर्थपरिग्रह:॥2॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[आत्मादे: ज्ञानं प्रमाणं] आत्मा आदि का ज्ञान प्रमाण है [उपाय: न्यास: इष्यते] उनके जानने का उपाय न्यास-निक्षेप माना जाता है और [ज्ञातु: अभिप्राय: नय:] ज्ञाता का अभिप्राय नय है [युक्तित: अर्थपरिग्रह:] इस प्रकार युक्ति से अर्थ का ज्ञान होता है॥२॥

## 'विषय अकारण नहीं होता है' इस बौद्धमत का निराकरण करने के लिए अर्थ को कारण मानने का खंडन करते हैं

अयमर्थ इति ज्ञानं विद्यान्नोत्पत्तिमर्थत:।

अन्यथा न विवाद: स्यात्कुलालादिघटादिवत्॥3॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[ अयं अर्थ: इति ज्ञानं] यह अर्थ है इस प्रकार का ज्ञान [अर्थत: उत्पत्तिं] अर्थ से अपनी उत्पत्ति को [न विद्यात्] नहीं जानता है [अन्यथा] अन्यथा [कुलालादिघटादिवत्] कुंभकार आदि से घटादि उत्पत्ति के ज्ञान के समान [विवाद: न स्यात्] विवाद नहीं होना चाहिए॥३॥

## अनुमान से ज्ञान की उत्पत्ति की सिद्धि हो जावेगी, ऐसी आशंका होने पर आचार्य कहते हैं -

अन्वयव्यतिरेकाभ्यामर्थश्चेत्कारणं विद:।

संशयादिविदुत्पाद: कौतस्कुत इतीक्ष्यतां॥4॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[चेत्] यदि [अन्वयव्यतिरेकाभ्यां] अन्वय-व्यतिरेक के द्वारा [अर्थ: विद: कारणं] अर्थ ज्ञान का कारण है, तब तो [संशयादिवित् उत्पाद:] संशय आदि ज्ञान का उत्पाद [कौतुस्कुत:] किससे होगा ? [इति ईश्यतां] इस पर विचार कीजिए॥४॥

## अज्ञानरूप भी सन्निकर्ष प्रमाण है इस आशंका का निराकरण करते हुए कहते हैं

सन्निधेरिंद्रियार्थानामन्वयव्यतिरेकयो:॥

कार्यकारणयोश्चापि बुद्धिरध्यवसायिनी॥5॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[इंद्रियार्थानां] इंद्रिय और पदार्थों के [सन्निधे:] सन्निकर्ष का [अन्वय व्यतिरेकयो:] अन्वय-व्यतिरेक का [च] और [कार्यकारणयो: अपि] कार्य कारण का भी [अध्यवसायिनी] निश्चय कराने वाला [बुद्धि:] ज्ञान है॥५॥

### अब आलोक को ज्ञान के कारणपने का निराकरण करते हुए कहते हैं

तमो निरोधि वीक्षंते तमसा नावृतं परं॥
कुड्यादिकं न कुड्यादितिरोहितमिवेक्षका:॥6॥
**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[ईक्षका:] देखने वाले [निरोधि तम:] घटादि के निरोधक ऐसे अंधकार को [वीक्षंते] देखते हैं किन्तु [तमसा आवृतं परं न] अंधकार से आच्छादित पर घटादि को नहीं [इव] जैसे [कुड्यादिकं] दीवाल आदि को देखते हैं, वैसे [कुड्यादितिरोहितं न] दीवाल आदि से तिरोहित को नहीं देखते हैं॥६॥

### अर्थ से ज्ञान की उत्पत्ति न मानने पर संपूर्ण अर्थ को प्रकाशित करने का प्रसंग हो जावेगा क्योंकि इनमें कोई अंतर नहीं है, ऐसी आशंका होने पर आचार्य कहते हैं

मलविद्धमणिव्यक्तिर्यथाऽनेकप्रकारत:॥
कर्मविद्धात्मविज्ञप्तिस्तथानेकप्रकारत:॥7॥
**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[यथा] जैसे [मलविद्धमणिव्यक्ति:] मल से आच्छादित मणि की व्यक्ति [अनेकप्रकारत:] अनेक प्रकार से होती है [तथा] वैसे ही [कर्मविद्धात्मविज्ञप्ति:] कर्म से आच्छादित आत्मा का ज्ञान भी [अनेकप्रकारत:] अनेक प्रकार से होता है॥७॥

### ज्ञान जिस अर्थ से उत्पन्न होता है, जिस आकार का अनुकरण करता है और जिसके विषय में निश्चय को उत्पन्न करता है, उसी विषय में उस ज्ञान की प्रमाणता है किन्तु सर्वत्र नहीं है, ऐसी सौगत की आशंका का आचार्य खंडन करते हैं

न तज्जन्म न तादूप्यं न तद्व्यवसिति: सह॥
प्रत्येकं वा भजंतीह प्रामाण्यं प्रति हेतुतां॥8॥
**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[इह] ज्ञान में [प्रामाण्यं प्रति] प्रमाणता के प्रति [तज्जन्म] तदुत्पत्ति [हेतुतां न] हेतु नहीं है, [न तादूप्यं] न तदाकारता है और [न तद् व्यवसिति:] न तद्ध्यवसाय ही है [सह प्रत्येकं वा भजंति] ये तीनों न मिलकर ही हेतु हैं न एक-एक ही हेतु होते हैं॥८॥

### इसलिए अपने कारण समूहों से उत्पन्न होता हुआ प्रकाशरूप ज्ञान स्वत: ही अर्थ को ग्रहण करने वाला है, अब आचार्य इस बात को कहते है -

स्वहेतुजनितोऽप्यर्थ: परिच्छेद्य: स्वतो यथा॥
तथा ज्ञानं स्वहेतूत्थं परिच्छेदात्मकं स्वत:॥9॥
**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[स्वहेतुजनित: अपि अर्थ:] अपने हेतु से उत्पन्न हुआ भी अर्थ [यथा स्वत:] जैसे स्वत: [परिछेद्य:] जानने योग्य है [तथा स्वहेतूत्थं ज्ञानं] वैसे ही अपने हेतु से उत्पन्न हुआ ज्ञान [स्वत:] स्वभाव से ही [परिच्छेदात्मकं] जानने रूप स्वभाव वाला है॥९॥

### 'ज्ञानं प्रमाणं आत्मादे:'- अब ज्ञान प्रमाण है वह आत्मा आदि को विषय करता है, इसी ही अर्थ को और स्पष्ट करते हैं

व्यवसायात्मकं ज्ञानमात्मार्थग्राहकं मतं॥
ग्रहणं निर्णयस्तेन मुख्यं प्रामाण्यमुश्नुते॥10॥
**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[व्यवसायात्मकं ज्ञानं] निश्चयात्मक ज्ञान [आत्मार्थग्राहकं मतं] अपने को और अर्थ को ग्रहण करने वाला माना गया है [ग्रहणं] वह ज्ञान [निर्णय:] निर्णयरूप है [तेन] इसलिए वह [मुख्यं प्रामाण्यं] मुख्य प्रमाणता को [अश्नुते] प्राप्त होता है॥१०॥

### इस समय उस प्रमाण की संख्या को कहते हैं

तत्प्रत्यक्षं परोक्षं च द्विधैवात्रान्यसंविदां।
अंतर्भावान्न युज्यंते नियमा: परकल्पिता:॥11॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[तत् द्विधा] वह प्रमाण दो प्रकार का है [प्रत्यक्षं परोक्ष च] प्रत्यक्ष और परोक्ष। [अन्य संविद्यं] अन्य ज्ञानों का [अत्र] इसमें [एव] ही [अंतर्भावात्] अंतर्भाव हो जाने से [परिकल्पिता:] पर से परिकल्पित प्रमाणों का [नियमा:] नियम [न युज्यंते] युक्त नहीं है॥११॥

### अब श्रुत के व्यापार भेद को दिखाते हैं

उपयोगौ श्रुतस्य द्वौ स्याद्वादनयसंज्ञितौ॥
स्याद्वाद: सकलादेशो नयो विकलसंकथा॥12॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[श्रुतस्य] श्रुतज्ञान के [स्याद्वादनयसंज्ञितौ] स्याद्वाद और नय इन नाम वाले [द्वौ उपयोगौ] दो व्यापार हैं। [सकलादेश:] संपूर्ण को कहने वाला [स्याद्वाद:] स्याद्वाद है और [विकलसंकथा] एक-एक अंश को सम्यक् प्रकार से कहने वाला [नय:] नय है॥१२॥

### 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग:' इत्यादि वाक्यों में, शास्त्र में अथवा लोक में स्यात्कार का प्रयोग क्यों नहीं किया गया है कि जिससे सर्वत्र वाक्य का अर्थ अनेकांत होवे ? इस प्रकार का आक्षेप होने पर आचार्य कहते हैं

अप्रयुक्तेऽपि सर्वत्र स्यात्कारोऽर्थात्प्रतीयते॥
विधौ निषेधेऽप्यन्यत्र कुशलश्चेत्प्रयोजक:॥13॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[चेत् प्रयोजक: कुशल:] यदि प्रयोगकर्ता कुशल है, तो [सर्वत्र] सभी जगह [विधौ निषेधे अपि] विधिवाक्य और निषेधवाक्य में भी [अन्यत्र] अन्य किसी में भी [अर्थात्] सामथ्र्य से [स्यात्कार:] स्यात्कार [अप्रयुक्ते अपि] बिना प्रयोग करने पर भी [प्रतीयते] प्रतीत हो जाता है॥१३॥

### वर्ण, पद और वाक्यात्मक शब्द विवक्षा के विषय हैं, पुन: स्यात्कार अर्थापत्ति से कैसे प्रतीति का विषय होगा ? ऐसी आशंका होने पर आचार्य कहते हैं

वर्णा: पदानि वाक्यानि प्राहुरर्थानवांछितान्॥
वांछिताँश्च क्वचिन्नेत्ति प्रसिद्धिरियमीदृशी॥14॥
स्वेच्छया तामतिक्रम्य वदतामेव युज्यते॥
वक्त्रभिप्रेतमात्रस्य सूचकं वचनं न्विति॥15॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[वर्णा: पदानि वाक्यानि] वर्ण, पद और वाक्य ये [अवांछितांन् वांछितान् च] अविवक्षित और विवक्षित [अर्थान् प्रादु:] अर्थों को कहते हैं और [क्वचित् ना इति] कहीं पर नहीं भी कहते हैं, [ईदृशी इयं प्रसिद्धि:] ऐसी यह प्रसिद्धि है [तो अतिक्रम्य एव] इस प्रसिद्धि को उल्लंघन करके ही [स्वेच्छया वदतां] स्वेच्छा से कहने वालों को [युज्यते] क्या यह युक्त है ? कि [वचनं] वचन [वक्त्रभिप्रेतमात्रस्य] वक्ता के अभिप्रायमात्र के [सूचकं] सूचक हैं [नु इति] अहो! इस प्रकार तो बड़ा आश्चर्य है॥१४-१५॥

### अब नय के भेदों को कहते हैं

श्रुतभेदा नया: सप्त नैगमादिप्रभेदत:॥
द्रव्यपर्यायमूलास्ते द्रव्यमेकान्वयानुगं॥16॥
निश्चयात्मकमन्योऽपि व्यतिरेकपृथक्त्वग:॥
निश्चयव्यवहारौ तु द्रव्यपर्यायमाश्रितौ॥17॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[श्रुतभेदा: नया:] श्रुतज्ञान के भेद नय हैं, वे [नैगमादिप्रभेदत:] नैगम आदि के भेद से [सप्त] सात हैं, [ते द्रव्य पर्याय मूला:] वे द्रव्य और पर्यायमूलक हैं। [एकं अन्वयानुगं द्रव्यं] एक और अन्वय का अनुसरण करने वाला द्रव्य है, [निश्चयात्मकं] वह निश्चय स्वरूप है और [अन्य: अपि] अन्य पर्याय भी [व्यतिरेक पृथक्त्वग:] व्यतिरेक तथा पृथक्त्व का अनुसरण करने वाली है। [निश्चय व्यवहारौ तु] निश्चय और व्यवहार तो [द्रव्यपर्यायमाश्रितौ] द्रव्य और पर्याय का आश्रय लेने वाले हैं॥१६-१७॥

## अब पहले कहे गये भी नैगम आदि नयों को मंदमति वाले शिष्यों के अनुग्रह के लिए पुन: कहने की इच्छा रखते हुए पहले नैगम और नैगमाभास का निरूपण करते हैं

गुणप्रधानभावेन धर्मयोरेकधर्मिणि ॥
विवक्षा नैगमोऽत्यंतभेदोक्ति: स्यात्तदाकृति:॥18॥
**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[धर्मयो:] एकत्व-अनेकत्वरूप दो धर्मों को [गुण प्रधान भावेन] गौण तथा प्रधानभाव से [एकधर्मिणि] एक धर्मी में [विवक्षा] कहने की इच्छा [नैगम:] नैगमनय है और [अत्यंतभेदोक्ति:] दोनों धर्मों में अत्यंत भेद का कथन करना [तदाकृति: स्यात्] नैगमाभास होता है॥१८॥

## अब संग्रहनय और संग्रहाभास को कहते हैं

सदभेदात्समस्तैक्यसंग्रहात्संग्रहो नय:।
दुर्नयो ब्रह्मवाद: स्यात्तत्स्वरूपानवाप्तित:॥19।
**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[सद्भेदात्] सत् सामान्य के अभेद से [समस्तैक्यसंग्रहात्] समस्त को एकरूप से संग्रह करने से [संग्रह: नय:] संग्रह नय होता है और [ब्रह्मवाद: दुर्नय:] ब्रह्माद्वैतवाद दुर्नय-संग्रहाभास [स्यात्] है [तत्स्वरूपानवाप्तित:] क्योंकि वह ब्रह्म के स्वरूप को प्राप्त करने वाला नहीं है॥१९॥

## अब व्यवहारनय का निरूपण करते हैं -

व्यवहारानुकूल्यात्तु प्रमाणानां प्रमाणता॥
नान्यथा बाध्यमानानां ज्ञानानां तत्प्रसंगत:॥20॥
**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[व्यवहारानुकूल्यात्तु] व्यवहार की अनुकूलता से ही [प्रमाणानां] ज्ञानों की [प्रमाणता] प्रमाणता है [अन्यथा न] अन्य प्रकार से नहीं है, [बाध्यमानानां] अन्यथा बाधित होने वाले [ज्ञानानां] ज्ञानों में भी [तत्प्रसंगत:] प्रमाणता का प्रसंग हो जावेगा॥२०॥

## अब ऋजुसूत्रनय और तदाभास का प्ररूपण करते हैं

भेदं प्राधान्यतोऽन्विच्छन् ऋजुसूत्रनयो मत:॥
सर्वथैकत्वविक्षेपी तदाभासस्त्वलौकिक:॥21॥
**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[प्राधान्यत:] प्रधानता से [भेदं] भेद को [अन्विच्छन्] स्वीकार करते हुए [ऋजुसूत्रनय: मत:] ऋजुसूत्रनय माना गया है और [सर्वथा] सब प्रकार से [एकत्वविक्षेपी] एकत्व का निषेध करने वाला [तु अलौकिक: तदाभास:] तो लोकव्यवहार से विरुद्ध तदाभास होता है॥२१॥

## अब उक्त नयों के विशेषण और विशेष नय स्वरूप को प्रतिपादित करते हैं

चत्त्वारोऽर्थनया ह्येते जीवाद्यर्थव्यपाश्रयात्॥
त्रय: शब्दनया: सत्यपदविद्यां समाश्रिता:॥22॥
अकलंकप्रभाभारद्योतितं श्रुतमर्थत:॥
प्रमानयोपयोगात्म सौरी वृत्ति: प्रबोधयेत्॥1॥
**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[ऐते ही चत्वार: अर्थनया:] निश्चितरूप से ये चार ही अर्थ नय हैं [जीवाद्यर्थव्यपाश्रयात्] क्योंकि जीवादि पदार्थों का

आश्रय लेते हैं [त्रय: शब्दनया:] शेष तीन शब्दनय हैं, [सत्यपदविद्यां समाश्रिता:] क्योंकि ये व्याकरण शास्त्र का आश्रय लेने वाले हैं॥२२॥

## अब निक्षेप के स्वरूप को निरूपण करते हुए शाध्Eा अध्ययन के फल का निर्देश करते हैं

श्रुतादर्थमनेकांतमधिगम्याभिसंधिभि:॥
परीक्ष्य ताँस्तान् तद्धर्माननेकान् व्यावहारिकान् ॥1।
नयानुगतनिक्षेपैरुपायैर्भेदवेदने ॥
विरचय्यार्थवाक्प्रत्ययात्मभेदान् श्रुतार्पितान्॥2॥
अनुयुज्यानुयोगैश्च निर्देशादिभिदागतै:॥
द्रव्याणि जीवादीन्यात्मा विवृद्धाभिनिवेशन:॥3॥
जीवस्थानगुणस्थानमार्गणास्थानतत्त्ववित्॥
तपोनिर्जीर्णकर्माऽयं विमुक्त: सुखमृच्छति॥4॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[श्रुतान] श्रुत से [अनेकांत] अनेकांतात्मक [अर्थं अधिगम्य] अर्थ को जानकर [तांस्तान्] उन-उन [अनेकात् व्यावहारिकान्] अनेक व्यावहारिक [तद्धर्मान्] उस-वस्तु के धर्मों की [अभिसंधिभि:] ज्ञाता के अभिप्रायरूप नयों से [परीक्ष्य] परीक्षा करके [उपायै:] ज्ञान के लिए उपायभूत [नयानुगतनिक्षेपै:] नयों का अनुसरण करने वाले ऐसे निक्षेपों से [भेदवेदने] भेदों के जानने में [श्रुतार्पितान्] श्रुत से विकल्पित [अर्थवाक्यप्रत्यात्म भेदान्] अर्थात्मक, वचनात्मक और ज्ञानात्मक भेदों का [विरचय्य] न्यास करके-कथन करके, [आत्मा] जीव [विवृद्धाभिनिवेशन:] वृद्धि को प्राप्त हुए सम्यग्दर्शन से सहित [निर्देशादिभिदागतै:] निर्देश आदि भेदों को प्राप्त हुए ऐसे [अनुयोगै:] अनुयोगों से [जीवादीनि] जीवादिक [द्रव्याणि] द्रव्यों को [अनुयुज्य] पूछ करके [जीवस्थानगुणस्थानमार्गणा स्यात् तत्त्ववित्] जीवस्थान, गुणस्थान और मार्गणा स्थानों के द्वारा तत्त्व-जीवादिस्वरूप को जानने वाला [तपोनिर्जीर्णकर्मा] तप से कर्मों को निर्जिर्ण कर दिया है जिसने [अयं] ऐसा यह [विमुक्त:] कर्मों से मुक्त हुआ [सुखं] सुख को [ऋच्छति] प्राप्त करता है॥१-२-३-४॥

## अब पुन: शास्त्र के अध्ययन के फल को दिखलाते हैं -

भव्य: पंचगुरून् तपोभिरमलैराराध्य बुध्वाऽऽगमं।
तेभ्योऽभ्यस्य तदर्थमर्थविषयाच्छब्दादपभ्रंशत:॥
दूरीभूततरात्मकादधिगतो बोद्धाऽऽकलंकं पदं।
लोकालोककलावलोकनबलप्रज्ञो जिन: स्यात् स्वयं ॥5॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[भव्य:] भव्य जीव [अमलै: तपोभि:] निर्दोष तपश्चरण से [पंचगुरुन् आराध्य] पंच परम गुरुओं की आराधना करके, [आगमं बुद्ध्वा] आगम को जानकर, [तेभ्य: तदर्र्थं अभ्यस्य] उन गुरुओं से उस आगम के अर्थ का पुन:-पुन: अभ्यास करके [दूरी भूततरात्मकात्] दूरी भूततररूप [अर्थविषयात्] अर्थ को विषय करने वाले [अपभ्रंशत:] अपभ्रंश शब्दों से [आकलंकं पदं] निर्दोष-आर्हंत्यपद को [अधिगत: बोद्धा] प्राप्त हुआ ज्ञाता [लोकालोककलावलोकनबलप्रज्ञ:] लोक-अलोक के विभाग के अवलोकन में शक्ति और प्रकृष्ट ज्ञान से सहित हुआ [स्वयं] स्वयं ही [जिन:] 'जिन' [स्यात्] हो जाता है॥५॥

## अब पुन: परार्थ संपत्ति का निर्देश करते हैं

प्रवचनपदान्यभ्यस्यार्थांस्तत: परिनिष्ठिता-।
नसकृदवबुद्ध्येद्धाद्बोधाद्बुधो हतसंशय:॥
भगवदकलंकानां स्थानं सुखेन समाश्रित:।
कथयतु शिवं पंथानं व: पदस्य महात्मनां॥6॥

**अन्वयार्थ** : अन्वयार्थ-[प्रवचनपदानि] प्रवचन के पदों का [अभ्यस्य] अभ्यास करके [तत: परिनिष्ठितान् अर्थान्] उसमें व्यवस्थित अर्थों को [असकृत्] पुन:-पुन: [अवबुध्य] निश्चित करके [हतसंशय:] संशयादि दोषों से रहित [इद्धात् बोधात्] उज्ज्वल बोध से युक्त [बुध:]

ज्ञानी [भगवदकलंकानां] भगवान् अकलंक- अर्हंतदेव के [स्थानं समाश्रित:] स्थान को प्राप्त हुए हैं, वे [महात्मनां] सिद्ध आत्माओं के [पदस्य] पद के [शिवं पंथानं] कल्याणकारी मार्ग को [व:] आप लोगों के लिए [सुखेन] तालु आदि के व्यापार के क्लेश से रहित सुखपूर्वक [कथयतु] प्रतिपादित करें॥६॥

## श्री अभयचंद्रसूरि के उद्गार

नाभ्यासस्तादृगस्ति प्रवचनविषयो नैव बुद्धिश्च तादृक।
नोपाध्यायोऽपि शिक्षानियमनसमयस्तादृशोऽस्तीह काले॥
विंâत्वेतन्मे मुनींदुव्रतिपतिचरणाराधनोपात्तपुण्यं।
श्रीमद्भट्टाकलंकप्रकरणविवृतावस्ति सामथ्र्यहेतु:॥1॥
माऽयं मदांध इति चेतसि कोपमाधु-।
र्माधुर्यमेव वहते सुधियां मदुक्ति:॥
किं कामिनीजनमदोत्कटचाटुवाणी।
प्राणेश्वरस्य रसनाटकनर्तकी न॥2॥
तथाऽप्येतत्परीक्षंतां। मदुक्तम् मत्सरोज्झिता:॥
हीनाधिकमभिव्यक्तु। मेते हि निकषोपमा:॥3॥
विरुद्धं दर्शनं यस्य। निह्नवस्तस्य विंâकर:।
तेजोभिर्दुर्निरीक्ष्यं किं। घूकशूकोऽर्वâमृच्छति॥4॥
-अंतिम आशीर्वाद:-
भद्रमस्तु जिनशासनश्रिये। श्रायसैकपदकार्यजन्मने॥
जन्मजन्मकृततापलोपन-। प्रायशुद्धनिजतत्त्ववित्तये॥1॥

**अन्वयार्थ** : [अर्थ]-न तो मेरा वैसा प्रवचनविषयक अभ्यास है और न वैसी मुझमें बुद्धि है, न इस पंचमकाल में नियमितरूप से आगम की शिक्षा देने वाले उपाध्याय ही हैं किन्तु फिर भी जो मुनीन्दु व्रतियों के स्वामी हैं उनके चरणों की आराधना से उपार्जित किया हुआ ही यह पुण्य है कि जो श्रीमान् भट्टाकलंकदेव के इस लघीयस्त्रय प्रकरण की विवृत्ति-वृत्तिरूप टीका के करने में समर्थवान हेतु है॥१॥

[**अर्थ**]-'यह मदांध है' इस प्रकार से चित्त में क्रोध को मत कीजिए क्योंकि मेरे वचन विद्वानजनों में मधुरता को ही धारण करते हैं। क्या कामिनी स्त्रियों के मद से उत्कट हुए चाटुकर वचन उनके पतिदेव के रस नाटक को नर्तन कराने वाले नहीं होते हैं॥२॥

[भावार्थ]-जैसे स्त्रियों के प्रिय वचन उनके पतिदेवों को मधुर लगते हैं वैसे ही मेरे ये टीका में कहे गये वचन भी विद्वानों को मधुर लगेंगे।

[**अर्थ**]-फिर भी मत्सरभाव से रहित बुधजन इन मेरे वचनों की परीक्षा करें क्योंकि ये हीनाधिक को प्रगट करने के लिए कसौटी के पत्थर के समान हैं॥३॥

[भावार्थ]-श्री अभयचंद्राचार्य कहते हैं कि जिनके हृदय में मत्सर, ईष्र्या आदि भाव नहीं हैं ऐसे बहुश्रुतज्ञानी इस मेरे ग्रंथ की समीक्षा करें क्योंकि जैसे कसौटी का पत्थर इस सुवर्ण में कितने अंश में अन्य धातु का मिश्रण है या नहीं है इस बात को स्पष्ट बता देता है ऐसे ही यह मेरा ग्रंथ भी हीनाधिक दोषों को स्पष्ट कर देता है **अर्थ**ात् यह ग्रंथ हीनाधिक दोषों से रहित, निर्दोष, सरल और संक्षिप्त है और न्याय के क्लिष्ट विषय का प्रतिपादन करने वाला होते हुए भी इसकी सुंदर कथन शैली से विषय मधुर बन गया है।

[**अर्थ**]-जिनका दर्शन-सिद्धांत विरुद्ध है, निन्हव उनका किंकर है, क्या किरणों से दुर्निरीक्ष्य जिसको देखना कठिन है ऐसे सूर्य को उल्लू का बालक देख सकता है ?॥४॥

[भावार्थ]-जिनका मत स्याद्वाद से विपरीत एकांतरूप है उनका नौकर निन्हव है **अर्थ**ात् वे हमेशा सच्चे तत्त्वों का अपलाप किया करते हैं, सो ठीक ही है क्योंकि उल्लू के बच्चे को संख्यातों किरणों से व्याप्त ऐसा तेजस्वी सूर्य नहीं दिख सकता है वैसे ही नयरूपी संख्यातों किरणों से व्याप्त ऐसे स्याद्वादरूपी सूर्य का दर्शन वे एकांतवादी लोग नहीं कर सकते हैं। इस कथन से यहाँ पर अनेकांत की दुर्लभता को बतलाया है।

इस प्रकार से श्री अभयचंद्रसूरिकृत लघीयस्त्रय की स्याद्वादभूषण नामक तात्पर्यवृत्ति टीका में निक्षेप का प्ररूपण करने वाला सप्तम परिच्छेद पूर्ण हुआ।

प्रवचनप्रवेश नामक तृतीय महा अधिकार पूर्ण हुआ।

इस प्रकार से श्री भट्टाकलंकदेव रूपी चंद्रमा से अनुस्मृत लघीयस्त्रय नामक प्रकरण समाप्त हुआ है।

[अंतिम आशीर्वाद]

[श्लोकार्थ]-जन्म-जन्म में किये हुए ताप का लोप करने में प्राय: शुद्ध निजतत्त्व के ज्ञान स्वरूप, मोक्षरूप एक अद्वितीय पद उस पदस्वरूप कार्य को उत्पन्न करने वाली ऐसी जो जिनशासनरूपी लक्ष्मी है उसके लिए भद्र-कल्याण होवे॥१॥

[भावार्थ]-जो जिनशासन भव्यजीवों के जन्म-जन्म के संताप को दूर करने में समर्थ ऐसे शुद्ध आत्मा तत्त्व का बोध कराने वाला है और जो मोक्ष को प्रदान करने वाला है उस जिनशासन का सदा ही कल्याण होवे अथवा वह सदैव हितस्वरूप होता हुआ जयशील रहे।